International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 883-889

खरवार जनजाति : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. चौधुरी शिवव्रत महान्ति

निदेशक, कृष्णराव शोध संस्थान, अतिथि विद्वान, प्राचीन इतिहास, रानी दुर्गावती विश्व विद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

खरवार जनजाति के संदर्भ में सुनिश्चित लिखित इतिहास का अभाव है। पौराणिक आख्यानों में आये अस्पष्ट संदर्भ, यत्र–तत्र बिखरे शिलालेखों, प्राचीन गढ़ों के लुप्तप्राय से अवशेष एवं उनकी किंवदंतियों, मान्यताओं, प्रचलित परम्पराओं, भाषा, संस्कृति के आधार पर स्वतंत्र रूप से इनकी ऐतिहासिक कड़ी को संयोजित करने के अकादमिक प्रयास भी नगण्य हीं हुए हैं। खरवारों की उत्पत्ति, इनके प्राचीन अधिवास के संदर्भ में प्रमाणिक तौर पर कुछ नहीं कहा जा सका है। बी. एस. गुहा (1938) ने खरवार जनजाति को "प्रोटो ऑस्ट्रेलाइड" मूल का माना है। डॉ. मजूमदार का कहना है कि भारत में किसी भी जाति का प्रजातीय वर्गीकरण अत्यन्त कठिन है क्योंकि यहाँ पर कोई प्रजाति अपने शुद्ध रूप में नहीं है।

डॉ. शिवकुमार तिवारी (1992) के अनुसार खरवार, उरांव, मुण्डा, संथाल, हो, बिरहोर, खारिया, शवर, चेरो, बैगा इत्यादि एक ही वर्ग की जनजातियाँ हैं। जो मुख्य रूप से कैमूर पहाड़ियों के सुदूर अंचलों, सोनगंगा की घाटियों, वर्तमान झारखण्ड, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान एवं उड़ीसा की उपात्यका में न जाने कब से निवास कर रही हैं। विंध्य क्षेत्र के खरवार अपने को ठाकुर कहते हैं। यह समुदाय यह दावा करता है कि वे असली सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। सूर्यवंश की एक शाखा खरगवंश हैं, जिनके वंशज खरवार कहलाए। चेरो या भर भी जिनके विंध्य क्षेत्र के शासक होने के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं, अपने को खरगवंशी (सूर्यवंशी) क्षत्रिय मानते हैं। सोनभद्र के निकट कछवा से बरौनी घाट से पूरब केवटवीर नामक स्थान है। इसी प्रकार अगिया बीर नाम का भी एक स्थान है। यहाँ भरों का किला था। नाग शिव, भार शिव नाम से ख्यात भर राजवंशियों के किलों के भग्नावशेष टीले, मंदिर आज भी यत्र–तत्र पाये जाते हैं।

खरवार अपने सरनेम के साथ सिंह लगाते हैं और जनेऊ धारण करते हैं। खरवार जनजाति के लोग विपन्न हैं और आर्थिक दृष्टि से मुख्यतः कृषि एवं वनोपज के संग्रहण पर निर्भर हैं, लेकिन इनमें राजवंशी होने का गौरव बोध एवं स्वाभिमान की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। इनका मानना है कि ये पूर्व में भूपति और जमींदार थे, लेकिन अपनी फिजूलखर्ची की आदत की वजह के कारण गरीब हो गये। इतिहासकारों का मानना है कि रामगढ़ और जशपुर का राजपरिवार भी खरवार समुदाय से आता है। खरवार अपनी जनजाति में ही शादी–विवाह करते हैं लेकिन कुछ स्थानो पर ये अपनी एक उपजाति खांगर क्षत्रियों (बिहार में पिछड़े वर्ग में शामिल) के साथ भी उनके वैवाहिक संबंध होते हैं तथा राजस्थान में इनकी शादी परस्पर क्षत्रिय (राजपूत) यथा परमार, तोमर इत्यादि में भी होती है। (डब्ल्यू. क्रूक, 1896)

खरवार अपने को मनु की संतान मानते हैं। शतपथ ब्राहम्ण के अनुसार वैवस्वत मनु सभी मानव जाति के आदि पुरूष हैं एवं सभी मनुष्यों की उत्पत्ति मनु से हुई है। (मजुमदार, पुसालकर, 1951)

महाभारत के अनुसार, मनु के नौ पुत्र थे उसमें से एक करूष थे। उन्होंने भारत के पूर्वी राज्यों में अपना शासन स्थापित किया। विंध्य क्षेत्र को करूष देश के नाम से जाना जाता था (एफ. ई. पारगिटर, 1962)। खरवार जनजाति का विस्तार कुरूषों से होना बताया जाता है। खेर नामक स्थान पर ये कुरूष बस गए थे, जिसके कारण कालांतर में उनकी संतान 'खेरवाल' और आगे चलकर 'खरवार' कही जाने लगी। महाभारत युद्ध में में कुरूषों का नाम आया है, जिसने कोरवों का साथ दिया था।

कुछ शास्त्रकार मानते हैं कि करूष ही असुर थे। तत्कालीन समाज में असुरों को निरापद नहीं माना जाता था। शतपथ ब्राह्मण में असुरों को सम्मानित रूप से वर्णित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, असुर प्राच्या थे तथा पूर्वी भारत में निवास करते थे। भागवत पुराण मानता है कि, करूष लोग दृढ़, धर्मरक्षक एवं शक्तिशाली योद्धा हुआ करते थे। (मिर्जापुर गजेटियर, 1984)

एफ. ई. पार्जियर (1962) का मानना है कि सोनभद्र किसी युग में करूषों के अधीन रहा होगा। वे करूष साम्राज्य का विस्तार सोन नदी से होता हुआ रीवा जनपद तक मानते हैं। वे पूरी कैमूर घाटी को इसमें शामिल करते हैं। बी. सी. लॉ (1954) करूषों के अधिवास चार स्थानो पर मानते हैं – पहला रीवा, दूसरा शादाबाद, तीसरा– पुण्ड्र देश और चौथा विंध्याचल परिक्षेत्र को करूषों का क्षेत्र भागवत पुराण और वायु पुराण दोनों प्रमाणित करते हैं। (रामनाथ शिवेन्द्र, 2005)

मिर्जापुर गजेटियर (1984) के अनुसार, पौराणिक आख्यानों के विश्लेषण से यह मालूम पड़ता है कि करूषों का प्रारंभिक स्थान विंध्य पर्वत पर रीवा और मिर्जापुर की पहाड़ियों में था। जैसा कि वायु पुराण, मत्स्य पुराण एवं मार्कण्डेय पुराण में इन्हें विंध्यपृष्ठ निवासी कहा गया है। वहाँ से संभवतः उनका विस्थापन दो भागों में हुआ। उनका एक दल मालवा की ओर गया जिसे ब्राह्मण्ड पुराण में दशर्ण और अवन्ति के नाम से वर्णित किया गया है। दूसरा दल भोजों का अनुसरण किया होगा, जो मिर्जापुर से शाहाबाद, पलामू और सिंहभूम में व्यवस्थित हो गए थे। विष्णु पुराण के अनुसार, करूष लोग मुख्यतया कसिस, मत्स्य, चेदी, पंचाल तथा भेजों से संबंधित रहे होंगे। संभवतः मिर्जापुर तथा सोनभद्र में पाये जाने वाले भर तथा चेरों इन्हीं करूषों के वंशज रहे हों। करूषों के संदर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य चन्दन शहीद पहाड़ी पर पाये जाने वाले अशोक शैल स्तम्भ में उनका वर्णन है। (मिर्जापुर गजेटिर, 1984) अशोक के रूपनाथ तथा सासाराम में पाये जाने वाले शिलालेखों में अटावी देश का वर्णन मिलता है, जो कि वनाच्छादित है। डॉ. भण्डारकर का मानना है कि, रूपनाथ एवं सासाराम में पाये जाने वाले शैल स्तम्भ अटावी राष्ट्र के पूर्वी तथा पश्चिमी सीमा का सीमांकन करते हैं। शताब्दियों पश्चात समुद्रगुप्त ने इस क्षेत्र को वनराज्ञः (वनों के सभी राजा) शब्द से उल्लेखित किया है। इस वनराज्य की व्याख्या महाराजा सम्क्षोव के खोह ताम्रपत्र से होती है कि, इसके अधिपति 18 वन शासक थे। वृहतसंहिता में भारत के उत्तर–पूर्व में स्थित वन राष्ट्र का उल्लेख है। (मिर्जापुर गजेटिर, 1984)

डी. आर. भण्डारकर ने निष्कर्ष निकाला है कि, अटाविका देश का विस्तार बघेलखण्ड से लेकर उड़ीसा के समुद्रतट तक था, जिसके शासक वनजातियाँ थीं। (भफारकर, डी. आर., 1923)

मिर्जापुर गजेटियर (1984) लिखता है कि पुरातात्विक साक्ष्यों से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि प्रताप धवल देव, रोहतास गढ़ का दुर्गपति (शासक) था। (ताराचेड़ी शिलालेख)। रोहतास गढ़ और उससे संलग्न क्षेत्रों में इससे संबन्धित कई पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। विभिन्न शिलालेखों के अनुसार 12 वीं–13 वीं शदी में गहवाल शासन के अंतर्गत एक बड़े क्षेत्र पर खयार वाला वंश का शासन था। विद्वानों का मानना है कि खयार वाल का ही अपभ्रंश खरवार है। इसके वंश के बारे में विशेष जानकारी के लिए शिलालेखों और सन्दर्भों का अध्ययन आवश्यक होगा। नायक प्रताप धवल का पहला शिलालेख 'तुतराही' (वर्तमान बिहार) में कैमूर पहाड़ी पर स्थित एक गांव, का है, जिसे उसने दुर्गा देवी (तुतला भवानी) की प्राण–प्रतिष्ठा के अवसर पर विक्रम संवत 1214 के ज्येष्ठ माह में कृष्ण पक्ष की चतुर्थी , दिन शनिवार तदनुसार 19 अप्रैल 1158 को उत्तीर्ण कराया था। शिलालेख भी भाषा संस्कृत तथा लिपि प्रारम्भिक नागरी है। तुतराही के शिलालेख का प्रथम उल्लेख फ्रांसिस बुकानन ने अपने यात्रा–वृतांत (1813) में किया है। 1902 ई. में टी. ब्लाख यहां आए और उन्होंने इस शिलालेख को पढ़ा और जानकारी दी। इस शिलालेख के अनुसार नायक प्रताप धवल देव जपिलिया द्वारा जगद्धात्री दुर्गा की प्राण–प्रतिष्ठा की गई। इस अवसर पर उसके परिवार के सदस्यों के साथ संबन्धी भी उपस्थित थे, जैसे सुलही (भाई की पत्नि), त्रिभुवन लाल (उसका भाई) उसके तीनों पुत्र शत्रुघ्न, बिराधत और सहस धावल, पांच दासियां लदुमा, लयका, अलही, द्वारपाल–विमल और राजदरबार पंडित विश्वरूप आदि (एपिग्राफिक इंडिया, पृष्ठ 4)।

दूसरा अभिलेख रोहतास गढ़ के फुलवारी घाट में मिला, जिसमें जपला के नायक प्रताप धवल देव द्वारा रोहतास पहाड़ी के ऊपर जाने के लिये बनवाई गई सड़क का उल्लेख है। यह शिलालेख विक्रम संवत 1285 के वैशाख माह, कृष्ण पक्ष की द्वादशी तिथि दिन–वृहस्पतिवार तदनुसार 27 मार्च 1169 का है। इस शिलालेख की भी भाषा संस्कृत और लिपि नागरी है। इस शिलालेख की खोज 1898 में कीलहार्न ने किया था (एपिग्राफिक इंडिया)।

प्रताप धवलदेव का तीसरा अभिलेख तारा चंडी अभिलेख है, जो फुलवारी घाट शिलालेख के मात्र 20 दिन बाद यानि विक्रम संवत् 1225 के ज्येष्ठ मास कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि तदनुसार 16 अप्रैल 1169 ई. का है, जिसमें उसके नाम के साथ 'महानायक' प्रताप धवल देव उत्कीर्ण है (एपिग्राफिक इंडिया)

ख्यारवाल वंश का अगला अभिलेख सोन नदी के पूर्वी तट पर मिला ताम्र पत्र लेख है, जो प्रताप धवल के पौत्र और सहस्र धवल के पुत्र राजा इन्द्र धवल का है। इसके द्वारा राजा इन्द्र धवल ने अपने महामांडलिक (सामंत) उदयराज (कंदवा के राजा) के माध्यम से दो ब्राह्मणों धारेश्वर और महादित्य को गम्भारी गांव प्रदान किया है (डॉ. आर. पाटील, 1963)। यह ताम्र पत्र लेख वि. सं. 1254 के कार्तिक पूर्णिमा, सोमवार तदनुसार 27 अक्टूबर 1197 ई. को जारी किया गया था, जो गढ़वाल राजा जयचंद्र के मरने के लगभग तीन वर्ष बाद का है। इस समय तक इन्द्रधवल स्वतंत्र राजा बन चुका था। इस ताम्रपत्र के सामने वाले भाग में 24 पंक्तियां हैं, जबकि 4 पंक्तियां पीछे वाले भाग में हैं। इस ताम्रपत्र की भाषा संस्कृत और लिपि नागरी है (कैमूर अर्कियोलॉजी डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, 2001)। यह एक महत्वपूर्ण अभिलेख है, जिसमें ख्यारवाल वंश के दो राजाओं का नाम मिलता है। प्रथमतः ख्यारवाल वंश के संस्थापक खादिरपाल थे, जिसके वंशज प्रताप धवल देव हुए और दूसरा प्रतापधवल के पौत्र इन्द्रधवल देव का, जिसने अपने सामंत के माध्यम से ताम्रपत्र जारी किया।

इस वंश का अगला शिलालेख क्षितिन्द्र (राजा) श्री प्रताप का है। यह शिलालेख रोहतास गढ़ के लाल दरवाजा के पास एक चट्टान पर लिखा था। यह शिलालेख माधव नामक एक व्यक्ति के द्वारा तालाब या कुएँ की खुदाई के अवसर पर विक्रमी संवत 1279 ई. के चैत्र माह शुक्ल पक्ष प्रतिपदा, दिन रविवार तदनुसार 05 मार्च 1232 ई. को लिखा गया। इसकी भी भाषा संस्कृत और लिपि नागरी है (एपिग्राफिक इंडिया)।

किलहार्न के अनुसार, श्री प्रताप भी संभवतः महानायक प्रताप धवल देव जपिलिया का ही वंशज रहा हो (डी. आर. पाटिल, 1993)। इस शिलालेख में राजा श्री प्रताप को यवन दलन (यवनों का नाश करने वाला) कहा गया है। संभवतः उसने बख्तियार खिलजी के पुत्र मुहम्मद को हराया था, क्योंकि तबकात–ए–नासरी के अनुसार मुहम्मद ने गंगा और कर्मनाशा नदियों के बीच भागवत और भईली की जागीर 1199 ईं. में प्राप्त की थी। इस अभिलेख के माध्यम से यह पता चलता है कि इस राजवंश ने कम से कम 37 वर्षों तक मुस्लिम आक्रान्ताओं का प्रतिरोध किया था (डॉ. भगवान सहाय, 1962)।

फ्रांसिस बुकानन (1812–13) ने अपने यात्रा वृतांत में बांदू शिलालेख का उल्लेख किया है। इस शिलालेख में प्रताप धवल देव के अतिरिक्त रोहतासगढ़ पर शासन करने वाले शासकों का नाम निम्न क्रम में दिया गया है (सी. ई. ए. डब्ल्यू. ओल्डहान, 1930) –

1. महानृपति उदयधवल – 1 वर्ष
2. महानृपति प्रताप धवल – 21 वर्ष
3. महानृपति विक्रमधवल देव विजय
4. महानृपति सहसधवल
5. महानृपति गोधाराय
6. महानृपति श्री मीरन
7. महानृपति श्री सुभासेन
8. महानृपति श्री बुधन राय
9. महानृपति श्री चीमा राय
10. महानृपति श्री श्रवण चंद्र
11. महानृपति श्री उदय चंद

अभिलेख के निचले भाग में कुछ ऐसे नाम भी अंकित हैं, जिससे इस शिलालेख की प्रमाणिकता पर संदेह होता है। वे नाम इस प्रकार हैं –

1. महाराजाधिराज केस राय
2. महाराजाधिराज श्री प्रताप नृपति, संवत 1624 वि. अर्थात् 1567 ई.
3. महाराजाधिराज श्री मंडन सिंह, महाप्रताप संवत 1653 वि. अर्थात् 1596 ई.।

इस अभिलेख 1161 ई. से 1596 ई. तक (435 वर्ष) खयार वाला राजाओं के वंशावली का वर्णन दिया गया है। यह शिलालेख उदय चंद द्वारा तैयार कराई गई मालूम पड़ती है, जिसमें बाद में कुछ और नाम नीचे जोड़े गए हैं।

आर. सी. मजूमदार (1957) के अनुसार इस वंश का प्रथम ज्ञात सदस्य साधव है। साधव धवल का पुत्र राणा धवल था। राणा धवल का पुत्र जपला का महानायक प्रताप धवल हुआ प्रताप धवल का उत्तराधिकारी 'सहस' हुआ, जिसके दो पुत्र हुए– विक्रम धवल देव एवं इन्द्रधवल देव। इन्द्रधवल देव को 1197 क ताम्रपत्र अभिलेख में जपला का महानृपति कहा गया है। इन्द्रधवल के पश्चात् इस वंश को निश्चित रूप से नहीं जाना जाता है। एक और राजा का नाम क्षितिन्द्र श्री प्रताप मिलता है, जिसका शिलालेख 1223 ई. का है, संभवतः वह इन्द्रधवल का उत्तराधिकारी रहा हो।

शिलालेखों, ताम्रपत्र लेखों तथा अन्य स्त्रोतों से दी गई, खयार वाल वंश की वंशावली का तुलनात्मक विश्लेषण इस प्रकार है (डॉ. श्यामसुन्दर तिवारी, 2008) –

1. इस वंश की जो सूची दी गई है, उसमें से कुछ नाम लगभग सभी में हैं, जबकि कुछ नाम एक या दो सूचियों में ही दिये गए हैं।
2. व्यक्तिगत रूप से जो अभिलेख लिखवाए गए हैं, उनके बारे में संदेह नहीं किया जा जा सकता। जैसे–प्रताप धवल देव के सभी अभिलेख और इन्द्रधवल का 1254 (वि. स.) का ताम्रपत्र।
3. जो अभिलेख बाद में लिखा गया है या दूसरों से लिखवाया गया है उसकी सत्यता परखनी होगी। जैसे–लाल दरवाजा और बांदू का शिलालेख।

इन सूचियों की तुलनात्मक विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य और वंशावली उभर कर सामने आती है –

1. ख्यारवाल वंश का संस्थापक खदिरपाल था (इन्द्र धवल देव का ताम्रपत्र लेख)।
2. प्रताप धवल देव के पिता का नाम उदय धवल देव (बांदू शिलालेख) या फिर राजा धवल (आर. सी. मजूमदार) हैं।
3. राणा धवल से पहले भी इस परिवार में एक ज्ञात सदस्य हैं – साधव धवल (आर. सी. मजूमदार)।
4. त्रिभुवन देव प्रताप धवल देव के भाई थे (तुतराही शिलालेख)।
5. प्रताप धवल देव के तीन पुत्र थे– शत्रुघ्न, विराधन और सहस धवल (तुतराही शिलालेख)
6. सहस धवल के दो पुत्र हुए – विक्रम धवल और इन्द्र धवल (आर. सी. मजूमदार)। इन्द्रधवल अपने को सहस धवल का पुत्र कहता है। (पूर्व सोन तट पर प्राप्त ताम्रपत्र)
7. बांदू शिलालेख में सहस धवल से पूर्व विक्रम धवल का नाम अंकित है, जबकि इन्द्र धवल ने स्वयं अपने को प्रताप धवल का पौत्र और सहस धवल का पुत्र माना है। अतः बांदू शिलालेख में थोड़ी अशुद्धि है।
8. बांदू शिलालेख में क्षितिन्द्र श्री प्रताप का उल्लेख नहीं है, जबकि वह रोहतास गढ़ का शासक था। लाल दरवाजा अभिलेख में उसका नाम वर्णित किया गया है। विभिन्न विद्वानों ने श्री प्रताप को इन्द्रधवल का उत्तराधिकारी माना है। इस प्रकार ख्यार वाल वंश की वंशावली इस प्रकार बनेगी।

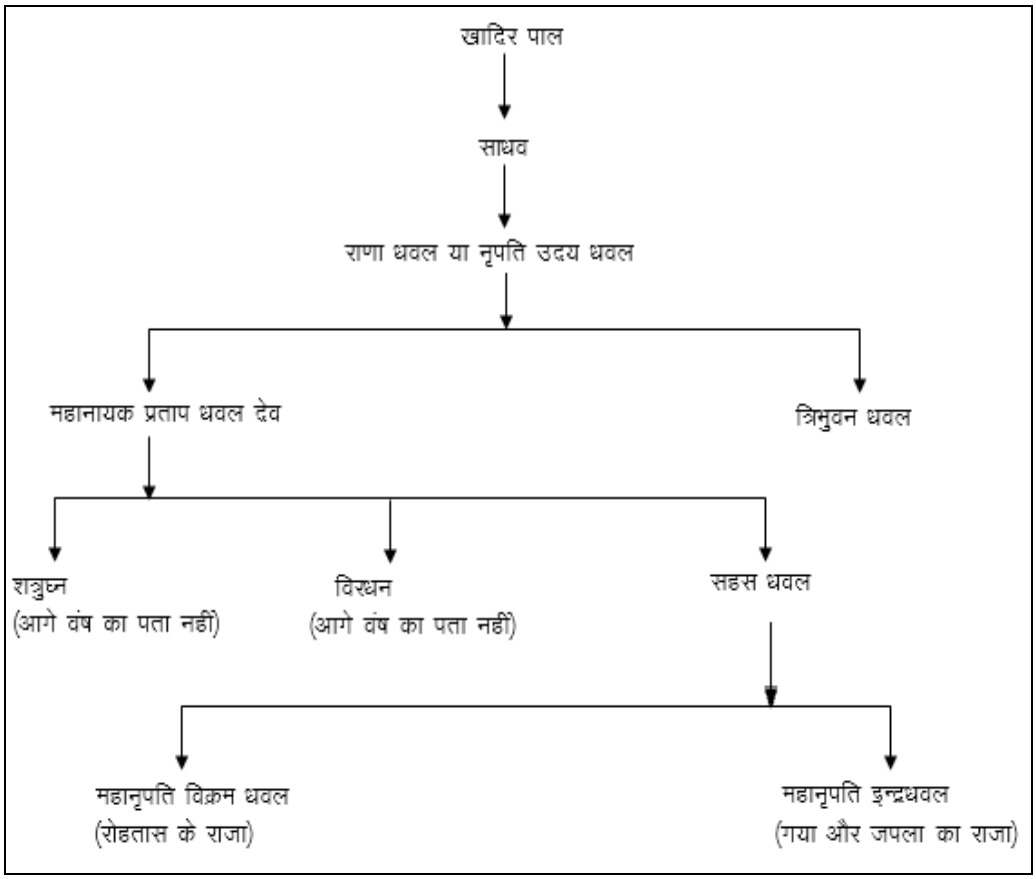

आरेख क्र. 1: ख्यारवाल वंश

इसी वंश में क्षितिन्द्र श्री प्रताप, महान श्री गोधा राय महानृपति श्री मरिन, महानृपति श्री सुभासेन, महानृपति श्री बुधन राय, महानृपति श्री चीमा राय, महानृपति श्री श्रवण चंद्र, महानृपति श्री उदय चंद्र आदि शासक हुए।

परातात्विक तथ्यों से हम पाते हैं कि ख्यारवाल वंश के शासकों का शासन सोन नदी से और आगे से लेकर कर्मनाशा नदी के आगे तक निश्चित रूप से रहा होगा।

खरवार जनजाति का उल्लेख करते हुए पी. सी. टैलेन्ट्स (1926) लिखते हैं, कि पलामू के खरवार 'अठारह हजारी' भी कहे जाते हैं। उस समय चरो 'बारह हजारी' कहे जाते थे। इसका संबन्ध पलामू के भागवत राय (चेरो राजा) के हमले से जुड़ा है, जिनकी सेना में इतनी ही संख्या में खरवार और चेरो सैनिक थे। ये कभी बड़े–बड़े जागीरों के मालिक थे, परन्तु बाद में अपनी शाहि खर्ची के कारण केवल खेतीहर भर रह गए। लापरवाही और आलसीपना के कारण वे खेती में भी पिछड़े हुए हैं। चेरो और खरवारों में वैवाहिक संबन्ध भी होता रहा है। उदाहरणतः पलामू के राजा (चेरो) ने रामगढ़ के खरवार राजा मनिनाथ सिंह की बहन के साथ शादी की थी, क्योंकि

दोनों ही अपनी उत्पत्ति राजपूत से मानते हैं। (मिरजापुर गजेटियर, 1984)

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार, खरवारों ने पलामू के चेरो शासकों के शासन के विस्तार में बहुत सहायता की, जिसके पुरस्कार स्वरूप चेरो जाति के शासकों द्वारा इन्हें पुरस्कार स्वरूप जागीर प्रदान की गयी। चेरो शासक भी अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय मानते हैं (मिर्जापुर गजेटिर, 1984)।

12 वीं सदी में सोनभद्र में बालन्दशाह के वंशजों का राज्य स्थापित था। बालन्दशाह खरवार वंश से संबंधित थे। इनके राज्य का विस्तार घोरावल के समीप बेलन नदी तक तथा पूरब की तरफ पलामू तक, दक्षिण की तरफ सिंगरौली व मध्यप्रदेश के सीधी, रीवा व अंबिकापुर तक फैला हुआ था जो कि 12 वीं सदी की स्थितियों की दृष्टि से छोटा न था। (रामनाथ, शिवेन्द्र, 1984)

मिर्जापुर गजेटियर (1984) बताता है कि यह राज्य काफी समृद्धशाली था। 12 वीं सदी के अंत तक वहाँ बलन्दशाह के वंशज मदनशाह का शासन था। 12 वीं सदी के अंत में वेतरावती (वर्तमान बेतवा) नदी के तट पर चौहानों एवं चंदेलों के बीच युद्ध हुआ। यह युद्ध चंदेलों ने बारीमल तथा पारीमल के नेतृत्व में लड़ा और इस युद्ध में चंदेल पराजित हुए और विजयश्री चौहानों के हाथ लगी। जनश्रुतियों के आधार पर गजेटियर लिखता है कि बारीमल तथा पारीमल युद्ध क्षेत्र से भागकर खरवार राजा मदनशाह के दरबार में पहुँचे एवं शरण की मांग की। मदनशाह द्वारा उन्हें नौकरी पर रख लिया जाता है एवं पशुधन, हाथियों, घोड़ों की देखभाल की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। वर्तमान बड़हर राज्य के वंशजों का मानना है कि उन्हें अंगोरी राज का मंत्री नियुक्त किया गया था। धीरे–धीरे ये अपनी स्थिति सुदृढ़ करते हैं एवं अपनी विश्वसनीयता स्थापित करते हैं। गजेटियर आगे बताता है कि, मदनशाह बीमार था, उसका पुत्र युद्ध में हिस्सा लेने कहीं गया हुआ था। पुत्र का नाम गजेटियर नहीं बताता।

मदनशाह, चंदेल पारीमल व बारीमल को यह कार्यभार सौंपता है कि वे उसकी बीमारी की खबर उसके पुत्र तक संप्रेषित करें। बारीमल व पारीमल ने यह सूचना मदनशाह के पुत्र तक नहीं पहुँचायी और मदनशाह की मृत्यु हो जाती है। मरने के पूर्व वे खजाने की चाभी पारीमल व बारीमल को सौंप देते हैं। पारमल व बारीमल अपने को राजा घोषित कर देते हैं। मदनशाह का पुत्र अगोरी के लिए वापस आता है तथा पण्डा नदी के आसपास, अगोरी से लगभग तीस मील दूर अपना पड़ाव डालता है। दन्तश्रुति है कि मंडवास के राजा बालन्दशाह के वंशज हैं। पारीमल व बारीमल अगोरी की सेना साथ लेकर मदनशाह के पुत्र व अगोरी के राजकुमार को घेर लेते हैं व उसकी हत्या कर डालते हैं। इतिहास अपने को दोहराता है। बालन्दशाह के वंशज एवं मदनशाह का उत्तराधिकारी घाटम ने अज्ञात स्थान पर नये ढंग से सेना का गठन किया। शिवेन्द्र महेन्द्र (2005) ने यह अनुमान लगाया है कि यह अज्ञात क्षेत्र सासाराम का रोहिताश्वगढ़ है या समुद्रगुप्त द्वारा वर्णित वन राज्यों में से कोई जगह। 1290 ई. में घाटम ने विजयगढ़ अगोरी के चंदेल राजाओं पर हमला किया। चंदेल राजवंश के सभी पुरूष मार डाले गये और अगोरी विजयगढ़ पर घाटम का आधिपत्य हो जाता है। घाटम के हमले में एक रानी सुरक्षित ढंग से किले से पलायन कर जाती है। वह गर्भवती रहती है। रानी के पलायन में उसकी दासी की बड़ी भूमिका थी, रानी पलायन करते हुए विजयनगर राज्य की सीमा तक पहुँच जाती है तथा दाई के बहन के यहाँ रूकती है। प्रसव के पश्चात् रानी का निधन हो जाता है। दाई उस बच्चे को लेकर बिलवनगांव गई जो मिर्जापुर व चुनार के बीच स्थित है। विजयपुर के राजा के सहयोग से उस नवजात बच्चे का पालन पोषण–शाहाबाद में कहीं कराये जाने लगा जो मृतक रानी के रिश्तेदार थे। बालक का नाम उड़नदेव था, उड़नदेव जब बालिग हुआ तो उसने राजा कन्नित (वर्तमान मिर्जापुर) के सहयोग से अगोरी पर आक्रमण किया। 1310 ई. में उड़नदेव अगोरी जीतने में सफल हो जाता है तथा वालन्दशाह के वंशज रीवा के मड़वास चले गये जहाँ वे आजादी के पूर्व तक शासक बने रहे। मध्यकाल में इस्लाम और इस्लामी शासकों का प्रभाव बढ़ता गया। रोहताश्वगढ़ पर शेरशाह कब्जा कर लेता है। 1661 ई. में दाउद खाँ ने पलामू के चेरों राजा को अपने अधीन कर लिया। रानी दुर्गावती को आसफ खाँ से लड़ना पड़ा। कुल मिलाकर मध्यकाल में वन राज्यों का क्षरण प्रारंभ हुआ। फिर भी 18वीं सदी तक कहीं–कहीं स्वतंत्रता के पूर्व तक इनके शासन के प्रमाण मिलते हैं। (मिर्जापुर गजेटिर, 1984)

खरवार–उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा

खरवार शब्द की वास्तविक उत्पत्ति के संदर्भ में निश्चितातापूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। रिसले महोदय (1915) ने लिखा है कि दक्षिणी लोहरदग्गा में रहने वाले खरवार खर घास को अपने टोटम का सम्मान देते हैं और वे खर (एक प्रकार की घास) को जब तक वह वृद्धि कर रहा हो, तक न तो काटते हैं और न हीं क्षति पहुँचाते हैं। उन्होंने अनुमान लगाया है कि हो सकता है 'खर' घास को अपना टोटम मानने के कारण उनका नाम खरवार पड़ा हो। सोनभद्र, मिर्जापुर, मध्यप्रदेश के खरवार जनजाति में खर घास को अपना टोटम मानने की कोई परम्परा नहीं है। रिसले ने अनुमान लगाया कि हो सकता है, कि इस जाति के लोगों का विस्थापन अन्य भागों से हुआ, जनसंख्या वृद्धि के पश्चात् बहुत समय बीत जाने पर इन्होंने अपना अलग टोटम विकसित किया हो अपना अलग परम्परा अलग विधान विकसित किया हो, लेकिन उनके नाम की पहचान उनके साथ लग रही हो।

एक अनुमान यह है कि इस जनजाति के लोग खैर के पेड़ की लकड़ी से खैर (कत्था) बनाने का कार्य करते थे। इसलिए इनके व्यवसाय खैर निर्माण से खरवार या खैरवार शब्द नाम उद्भुत हुआ हो। रसेल (1916) लिखते हैं, कि 'खैरवार' जो कत्था बनाते रहे हैं, बम्बई में 'कत्थाकारी' सेन्ट्रल प्रॉविन्सेज में 'खैरा, बंगारूपा में 'खैरी' और यूनाइटेड प्रॉविन्सेज में 'खैराहा' नाम से जाने जाते रहे हैं। खैर बनाने वाले इस समुदाय को खरवार हीन दृष्टि से देखते हैं। उनके साथ वे वैवाहिक संबन्ध स्थापित नहीं करते हैं।

खरवार शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में खरवार जनजाति के सभी उत्तरदाताओं ने शोधार्थी को बताया कि, हम खरे (विशुद्ध) सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। हमारे पूर्वजों का आचरण, उनका व्यवहार खरा होता था। हम अपनी बात पर खर (नहीं पलटने वाले) हैं। खरवार बहादुर होते थे, उनका वार (घात) भी खर (कठोर, खाली न जाने वाला) होता था, इसलिए हमारी जाति को खरवार कहा गया।

खरवार अपना मूल स्थान खैरागढ़ मानते हैं, जहाँ से अन्य स्थानों पर वे गये। ये खैरागढ़ कहाँ है, इसके संबंध में जनजातियों के विचारों में भारी अन्तर है। संथाल जनजाति के लोग झारखण्ड राज्य के हजारीबाग जिले में स्थित "खैरागढ़" को अपना मूल स्थान स्वीकारते हैं, लेकिन मिर्जापुर सोनभद्र के खरवार अपना जो मूल स्थान खैरागढ़ बताते हैं, वह मिर्जापुर से दक्षिण या पश्चिम में है। इस स्थिति में इसकी पहचान छत्तीसगढ़ सामंती राज्य में स्थित खैरागढ़ या इलाहाबाद जिले के खैरागढ़ परगना के रूप में की जा सकती है (नेसफील्ड, 1888)। सोनभद्र से जुड़े हुए विंध्य पर्वत श्रृंखला में वर्तमान बिहार राज्य के रोहतास जिले के रोहतासगढ़ किले से खरवारों का संबंध रहा है और कुछ लोगों का मानना है कि रोहतासगढ़ ही खैरागढ़ है। (क्रुक, 1896)

सोनभद्र एवं मिर्जापुर के खरवार मानते हैं कि उनका आप्रवासन रीवा और सिंगरौली से हुआ है। उनके जनजातीय तीर्थ ज्वालामुखी देवी का मंदिर वर्तमान सोनभद्र जिला के सिंगरौली तहसील के

कोटा नामक स्थान पर स्थित है। इस स्थान पर चैत्र महीने के रामनवमी के दिन पूजा के लिए खरवार जनजाति के लोग एकत्र होते हैं। ये अपना ब्राह्मण पुजारी सिंगरौली या पलामू से बुलाते हैं। (क्रुक डब्ल्यू, 1896)

शोधार्थी द्वारा अध्ययन क्षेत्र में भ्रमण के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में अधिकांश लोगों ने यह तो बताया कि वे खैरागढ़ के मूल निवासी हैं लेकिन यह खैरागढ़ कहाँ है, इसके संदर्भ में सभी लोगों ने अनभिज्ञता प्रकट की। कुछ लोगों ने बताया कि खैरागढ़ संभवतः अयोध्या के आसपास रहा होगा, वहीं से हमारे पूर्वज अलग–अलग स्थानों पर गये। हमारे सबसे नजदीकी पूर्वज रीवा में रहते थे, वहीं से हमलोग सोनभद्र में आए। कुछ लोगों ने बताया कि पहले हम मैदानी भागों में रहते थे। मुसलमान इस देश का राजा हो गया, हिन्दुओं पर गर्दिश आ गया। भागते–भागते कुछ लोग जंगलों में आकर छुप गये और अपना नाम बदल लिया। मैदानी भागों में रहने वाले राजपूत ठाकुर साहब हमारी ही बिरादरी के हैं, पहले हमारा ठाकुरों के यहाँ आना–जाना था पर बाद में बन्द हो गया। कुछ बुजुर्ग लोगों का कहना था कि खरवारों के आगमन से पूर्व अगरिया जंगल के राजा थे तथा लोहा, लोह का समान, खैर आदि बनाते थे। ये हाथ में पति लेकर चलते थे, जहाँ पति सूख जाती थी, एक कोस मान लेते थे। खरवारों के आगमन के पश्चात अगरिया लोगों ने बैठक की और कहा कि आप लोग ठाकुर हैं, राजवंशी हैं, अब आगे से आप लोग यहाँ के राजा होंगे, तब से खरवार जंगल के राजा बन गये। कुछ लोगों, जिसमें 120 वर्षीय जोखू सिंह भी हैं, ने बताया कि खरवार मैदानी भाग में रहने वाली एक शांतिप्रिय जाति थी। वहां का बादशाह मुसलमान था, वह डोला मांगता था, जिसमें वह घर की बहू–बेटियों को अपने महल में भेजवाने के लिये कहता था। जब खरवार जाति की बारी आयी तो हम लोग पहाड़ में आ गए कि हम अन्य लोगों की भांति अपनी इज्जत नहीं देंगें। यहां उस समय लोहा पिघलाने वाले अगरिया जाति के लोग थे, उनसे लड़ाई हुई और हम यहां के राजा हो गए।

सोनभद्र जिले में निवास कर रहे खरवार जनजातियों में अपनी उत्पत्ति के संबंध में किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। बुजुर्ग खरवार जनजाति के लोग बड़े गर्व के साथ खरवार जनजाति की उत्पत्ति विषयक कथा सुनाते हैं। अपने शोध क्षेत्र के भ्रमण के दौरान शोधार्थी को कई लोगों ने अपनी उत्पत्ति के संदर्भ में जो कथा सुनाये वे निम्न प्रकार से है –

भगवान सूर्य उनके आदि पुरूष हैं। लक्ष्मीजी की बेटी सारा अत्यन्त गुणवती एवं रूपवती थी। सूर्य देवता अपने ही समान रूप गुण वाली इस लड़की पर आसक्त थे। एक दिन सूर्य देवता सारा को रिझाने के लिए अपना मायावी शंख बजाना प्रारंभ किया। शंख की ध्वनि इतनी मधुर थी कि लक्ष्मी पुत्री भाव विभोर हो उसकी मधुरिमा में खो सी गयी एवं उन्हें जम्हाई आ गयी। संयोगवश उसी समय शंख बजा रहे सूर्य के शंख से उनके मुख से निकला हुआ थूक का एक कण उनके मुख में आ गिरा। परिणामतः वह गर्भवती हो गई। उसकी बाँह से भुजवल नामक तेजस्वीनि बालक ने जन्म लिया और जंघा से अतीव सुन्दरी कन्या जघराम पैदा हुई। भुजवल खरवार जनजाति का आदि पुरूष हुआ।

खरवारों की उत्पत्ति विषयक एक कथा डब्ल्यू, क्रुक (1896) बताते हैं, जो उन्हें संथालों से जोड़ती है। अति प्राचीन काल में राजहंसों की रानी महासागर को पार कर अहिरीपिपरी में आई और दो अण्डे देकर वापस सागर पार चली गई। कुछ समय पश्चात उन अण्डों में से एक पुरूष और एक नारी का जन्म हुआ जो कि संथाल जाति के जन्मदाता हुए। अहिरपिपरी से खरवारों पूर्वज हारादुती नामक स्थान पर आकर बस गये। यहाँ उनकी संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई। खर (घास) की तरह तेजी से जनसंख्या वृद्धि के कारण ये खरवार कहलाये। (नेसफील्ड कलकत्त रिव्यू 872) ने अहिरीपिपरी की पहचान उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जनपद के चुनार के पास की पहाड़ियाँ जहाँ चेरों शासकों का गढ़ था, के रूप में की है।

छोटा नागपुर के खैरवार की एक उपजाति अपनी उत्पत्ति राजा बेन से मानता है। मिथक के अनुसार राजा बेन के शासन काल में जातिप्रथा का महत्व नहीं रह गया था। उस समय में क्षत्रिय योद्धाओं और भर जाति के महिलाओं के संयोग से खरवारों का जन्म हुआ। (शिवकुमार तिवारी, 2005)

खरवार जनजाति की उत्पत्ति के संदर्भ में सोनभद्र के खरवार बताते हैं कि खरवारों की उत्पत्ति सूर्यवंशी राजा हरिशचन्द्र के पुत्र रोहिताश्व से हुई है। रोहतासगढ़ किला जो खरवार राजाओं का किला था, उसका नाम भी हरिशचन्द्र के पुत्र रोहिताश्व के नाम पर ही है। यही नहीं, बिहार के खरवार आबादी वाला जिला रोहतास का नाम भी रोहिताश्व के नाम पर ही है। सोनभद्र के खरवार अपने को रघुवंशी मानते हैं एवं जन्म से लेकर मृत्यु के तेरही संस्कार तक हर अवसर पर रामायण का पाठ उनके यहाँ किया जाता है।

पूरे देश में खरवार जनजाति की जनसंख्या 2001 की जनगणना के अनुसार 8,90,000 है। खरवार जनजाति के लोग सबसे अधिक संख्या में झारखण्ड में निवास करते हैं। झारखण्ड के राँची, हजारीबाग, पलामू जिले में खरवार जनजाति के लोग अधिक संघनित हैं। खरवारों की आबादी की दृष्टि से उत्तरप्रदेश का सोनभद्र जनपद दूसरे स्थान पर आता है। इसके अलावा खरवार जनजाति के लोग बिहार, बंगाल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र में भी पाये जाते हैं। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार, उत्तरप्रदेश में खरवार जाति की संख्या (बेनवंशी के अलावा) 1,19,248 बतायी गयी है। पूर्व में उत्तरप्रदेश में खरवार जाति को अनुसूचित जाति की वर्ग में रखा गया था एवं 2001 की जनगणना में भी इनकी गणना अनुसूचित जाति के रूप में ही की गयी है, लेकिन सचिव, उत्तरप्रदेश शासन, समाज कल्याण, अनुभाग–03 के शासनादेश संख्या–111/भा.स./26–03–2003–(7)/2003, दिनांक 03.07.2003 द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 2002 के द्वारा निम्नलिखित जातियों को अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में सम्मिलित किया गया। इनके नाम हैं – गोंड, धूरिया, नायक, ओझा, पठारी, राजगोंड, पहारिया, शहरिया, बैगा, पंखा, पनिका, अगरिया, पठारी, चेरो, भुईयाँ, भूमिया तथा खरवार एवं खैर वार जाति को अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में सम्मिलित किया गया।

वर्ष 2004 में समाज कल्याण विभाग की रिपोर्ट के अनुसार उत्तरप्रदेश में खरवार एवं जनजाति की संख्या 2,18,823 है, जिसमें सोनभद्र जिले में खरवार जनजाति की जनसंख्या सर्वाधिक 1,09,000 है।

निष्कर्षत

खरवार जनजाति का इतिहास पुराना है। मिर्जापुर में चेरों शासकों के आगमन से पूर्व के उनके इतिहास के संदर्भ में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। चेरो वंश की शासन व्यवस्था के संचालन एवं शासन के विस्तार में योगदान के फलस्वरूप चेरो शासकों ने उन्हें जागार प्रदान की। ऐतिहासिक साक्ष्यों से इन्हें राजा या जागीरदार होने के प्रमाण मिलते हैं। अपनी अशिक्षा, निर्धनता के बावजूद खरवार जनजाति के लोगों में अपने को राजवंशी होने का ठसक एंव गौरवबोध है जिसे वे बार–बार प्रकट करते हैं। सोनभद्र में अन्य जातियों एवं जनजातियों द्वारा भी खरवारों को सम्मान दिया जाता है एवं उन्हें गवहाँ (गांव का मालिक) कहा जाता है।

शारीरिक विशेषताएँ

विद्वानों ने खरवार जनजाति को प्रो आस्ट्रोलॉयड मूल का माना है। खरवार जनजाति के लोग सांवले रंग के, सिर लंबा बाल काले,

दाढ़ी–मूँछ अधिक, नाक साधारण लम्बी और फैली होती है, जैसा कि सर्वेक्षण के दौरान पाया गया। भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में खरवार जनजाति के शारीरिक गठन ऊँचाई, रंग आदि में अंतर देखने को मिला है। संभवतः इसका कारण कालक्रमानुसार उत्परिवर्तन या प्रजातीय मिश्रण हो सकता है। ज्ञातव्य है कि बिहार में रामगढ़ तथा छत्तीसगढ़ के जशपुर का राज परिवशर खरवार ही है, लेकिन उनकी शारीरिक संरचना में परिवर्तन आ गया है।

भाषा

खरवार जनजाति के लोग अपनी मूल भाषा भूल चुके हैं, और जहां जिस प्रदेश में, जिस जाति के मध्य रहते हैं उन्हीं की भाषा को अंगीकार कर लिया है। सोनभद्र, बिहार एवं झारखंड के कुछ भागों में खरवार भोजपुरी (हिन्दी भाषा की एक बोली) बोलते हैं। झारखंडमें निवास करने वाले खरवार संथाली भाषी हैं। निष्कर्षतः इन्होंने स्थानीय भाषा को स्वीकार लिया है एवं अपनी भाषा भूल चुके हैं।

अर्थव्यवस्था

खरवार जनजाति की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि है। कृषि के साथ पशुपालन, मजदूरी, वनोपज संग्रहण इनकी आय के अन्य स्त्रोत हैं। कुछ लोग लकड़ी बेचने का कार्य भरी करते हैं। लकड़ी काटने पर प्रतिबन्ध है फिर भी चोरी–छिपे ये लोग लकड़ी बेचते हैं।

संस्कृति

खरवार जनजाति का वर्तमान आवास क्षेत्र बहुजातीय क्षेत्र हो गया है, जहां विभिन्न संस्कृतियों का संगम बन गया है। अब उनकी कोई मौलिक संस्कृति शेष नहीं बची है।

आभूषण

खरवार जनजाति में आभूषण पहनने का प्रचलन काफी पहले से है। आभूषण सिर्फ महिलाएं ही नहीं पुरूष भी धारण करते थे। सर्वेक्षण के दौरान कई बुजुर्ग पुरूषों के कान छिदे मिले, जिसमें वे आभूषण पहनते थे, लेकिन अब पुरूष कोई आभूषण नहीं पहनते। कुछ नवयुवक के गले में चांदी की चैन देखने को मिली। महिलाएं कान में कुण्डल, कनढ़प्पा, कर्णफूल, नाक में कील, नथिया, गले में सिकड़ी, हंसली, हाथ में बाजु बंद एवं पैर में पायल तथा बिछुआ पहनती हैं। गहने सामान्यतः चांदी या गिलट के होते हैं। विधवा महिलाएं आभूषण नहीं पहनतीं।

आवास

खरवार जनजाति के अधिकांश घर मिट्टी की दीवार और छप्पर खपरैल के बने होते हैं। घर में आंगन और बाहर बरामदा हाता है। बरामदे में ढेकी और आटा पीसने की हाथ की चक्की होती है। घर में कमरों की संख्या परिवार परिवार में सदस्यों की संख्या के अनुपात में बनाई जाती है। घर में रसोई और भण्डार घर होता है। आंगन में तुलसी का पौधा होता है। छप्पर के नीचे एक और छत बनाकर खाद्यान्न रखने के लिये दुहती का निर्णया किया जाता है। घरों में सामान्यतः खिड़की नहीं होती। घर के बाहर लकड़ी का घेरा बनाकर जानवरों के रखने की व्यवस्था की जाती है।

सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन

खरवार जनजाति हमेशा से स्वतंत्र रहना पसंद करती है। वे अपने जंगल और जमीन के मालिक थे। अपने शारीरिक बल और कौशल से जंगलों को साफ कर खुंखार वन्य पशुओं से उस क्षेत्र को मुक्त कराकर सम्पन्न कृषक बन गए थे। उस समय उनको अपनी जमीन के कोई राज्य कर नहीं देना पड़ता था, न ही जंगलों में जाने और वन्य पदार्थों के उपयोग पर कोई पाबंदी थी, परंतु मुगल शासन द्वारा धोखे से उनसे खतरे में नजर आने लगी। शेरशाह द्वारा धोखे से उनसे रोहतास गढ़ ले लिया गया और वे काफी संख्या में वहां से पलायन करके सोन घाटी तथा पलामू में भी चेरो सरदारों के साथ वे मुगल बादशाहों से अपनी आजादी के लिये लड़ते रहे। अंग्रेजों के शासन काल में भी इन्होंने आजादी के लिये खुलकर विद्रोह किया।

1771 से 1817 ई. के बीच वे चेरो जनजाति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लड़ते रहे हैं। 1800 ई. में चेरो विद्रोह में खरवार जनजाति भी शामिल थी। 1817 में चेरो और खरवारों ने विद्रोह किया, 1832 के कोल विद्रोह में भी खरवार सम्मिलित थे। 1881 में हुआ सरदार आंदोलन भी खरवारों से जुड़ा आंदोलन था।

1857 के सिपाही विद्रोह में खरवारों के विरूद्ध विद्रोह किया। 1930 ई. के आस–पास कांग्रेस द्वारा जनजातियों को जंगल पर उनके अधिकार को वापस दिलाने और जंगलों से लकड़ी प्राप्त करने की छूट के लिये आयोजित वन सत्याग्रह में भी खरवार शामिल हुआ। 1917 के ताना भगत आंदोलन में भी खरवार सम्मिलित हुए। 1950 ई. में श्री पटेल सिंह खरवार के नेतृत्व में खरवारों ने आंदोलन किया, आंदोलन का मुद्दा था – ''जंगल की उपज को निःशुल्क प्राप्त करने के अधिकार'', लकड़ी को निःशुल्क प्राप्त करने का अधिकर, जमीन के लगान की पूर्ण और आंशिक माफी।

इस प्रकार खरवार जनजाति एक स्वतंत्र चेतना और सामाजिक–राजनीतिक पर जागरूक जनजाति है। सोनभद्र में इन्हें खुंट कटी जमींदार (जंगल काटकर जमीन बनाने वाला जमीन का मालिक) भी कहा जाता है।

इसी सन्दर्भ में नगवां गांव (ब्लॉक नगवां) के धनराज सिंह, जो खरवार जनजाति की सामाजिक व्यवस्था में बरही (12 गांव) के चौधरी हैं, उन्होंने बताया कि हम राजवंशी हैं और राजा का कर्तव्य है कि वह गरीबों का पालन करें, तन–मन से सबका सहयोग करें। हम लोग अभी भी करते हैं। चाहें हम कितना भी गरीब क्यों न हों। सूर्यवंशी कभी भीख नहीं मांग सकता। हम तन–मन–धन से लोगों का सहयोग करते हैं। गांव में यदि कोई तीन दिन तक नहीं दिखता था तो यह पता लगाया जाता था कि वह क्यों नहीं आया, कहीं वह बीमार तो नहीं है। किसी घर से यदि आग का धुंआ नहीं हुए मिलता था तो यह गवहां की जिम्मेदारी होती थी, वह पता करता था कि उसके घर से धुआं नहीं निकन रहा है उसके घर खाने को है या नहीं।

अन्य जनजातियों की भांति खरवार जनजाति पहाड़ी, पठारी एवं वनाच्छादित क्षेत्र में आकर बस गए। उस समय वह क्षेत्र घने जंगलों, अनेक प्रकार के वृक्षों और वन्य पशुओं से भरा हुआ था। उस समय के कृषि के साथ–साथ शिकारी जीवन से भी जुड़े हुए थे। उनका आवास क्षेत्र दुरूह होते हुए भी सुरक्षित था, वे कृषि कार्य के साथ–साथ पलामू में चेरो राजाओं के आगमन के बाद दुर्धर्ष सैनिक के रूप में अपनी पहचान बना लिये। उन्हें काफी जमीन जागीर भी मिली। कालक्रमानुसार जंगल कटते गए और बन से प्राप्त होने वाले संसाधनों का आभाव होता गया। वनों के कटने से अधिकांश भाग सुखे के चपेट में आता गया और खरवारों की आर्थिक स्थिति और अकाल के कारण खराब होती गई। वनों के कटने से वर्षा में कमी के साथ–साथ मिट्टी का क्षरण बढ़ा है। इससे कृषि उत्पादन में कमी आई है। वनों से मिलने वाले फल–फूल, कन्द–मूल, पशु–पक्षी आदि की उपलब्धता में भी कमी आई है, जिसके कारण खरवारों की आर्थिक स्थिति दिनों–दिन खराब होती गई।

निष्कर्षत

अन्य जनजातियों की भांति खरवार जनजाति पहाड़ी, पठारी एवं वनाच्छादित क्षेत्रों में आकर बस गई। उस समय वह क्षेत्र घने

जंगलों, अनेक प्रकार के वृक्षों और वन्य पशुओं से भरा हुआ था। उस समय वे कृषि के साथ–साथ शिकारी जीवन से भी जुड़े हुए थे। उनका आवास क्षेत्र दुरूह होते हुए भी सुरक्षित था। वहां के जंगल और जमीन परर उनका एक छत्र राज्य था। वे दृर्घर्ष सैनिक के रूप में अपनी पहचान लिए। उन्हें काफी जागीर भी मिली। कालक्रमानुसार जंगल कटते गए और वन से प्राप्त होने वाले संसाधनों का आभाव होता गया। वनों के कटने से अधिकांश भाग सुखे की चेपेट में आ गए और खवारों की आर्थिक स्थिति सुखे और अकाल के कारण खराब होती गई। वनों के कटने से वर्षा में कमी के साथ–साथ मिट्टी का क्षरण बढ़ा है। इससे कृषि उत्पादन में काफी कमी आई है। वनों से मिलने वाले फल–फूल, कन्द–मूल, पशु–पक्षी आदि की उपलब्धता में भी कमी आई है, जिसके कारण खरवारों की आर्थिक स्थिति दिनों दिन खराब होती गई।

संदर्भ

1. भारतीय बुलेटिन ऑफ द डिपार्टमेंन्ट ऑफ एनसिएन्ट सुधीर हिस्ट्री कल्चर एण्ड अर्चेओलॉजी (1996–97), वाल्यू. 23, पार्ट प्प बी. एच. यू, वाराणसी।
2. डाल्टन, ई. टी. (1872), ''डिक्रिप्टिव एथोनोलॉजी ऑफ बंगाल'' गवरमेंट ऑफ बंगाल, कलकत्ता।
3. फ्रेन्सियस बच्चन, (1930) केप्टड्यूरिंग द सर्वे ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ शाहाबाद इन 1812–13, एडिटेड बाई ओल्डहान, पटना गवरमेंट प्रेस।
4. केशरी, अर्जुनदास (2004), "विंध्य क्षेत्र का सांस्कृतिक वैभव, उत्तर–मध्य क्षेत्र" सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद।
5. कैमूर आर्किओलॉजी डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (के. ए. डी. जी), (2001), डिपार्टमेंट ऑफ आर्किओलॉजी, गवरमेंट ऑफ बिहार।
6. क्रूक, डब्ल्यू. बी. ए. (1896),''ट्राइब्स एण्ड कास्ट ऑफ द नॉर्थ–वेस्टर्न प्रोविन्सेज एण्ड ओध'' वाल्यूम प्प आफिस ऑफ द सुप्रिटेन्डेन्ट ऑफ द गवर्नमेन्ट प्रिन्टिंग, इंडिया।
7. मिर्जापुर गजेटियर, 1984
8. मिश्रा, सतीश चन्द्र (1950) ''सूर वंश का राजनीतिक इतिहास'' स्टूडे फेफस, वाराणसी।
9. मजुमदार, आर. सी. एवं पुसलकर, ए. डी. (1951), "दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन पिपल", वाल्युम–1, मुम्बई।
10. रामनाथ शिवेन्द्र (2005), "सोनभद्र प्राचीन", आनन्द कानन प्रेस, टेढ़ीनीम, वाराणसी।
11. रिपोर्ट, समाज कल्याण विभाग, 2004
12. शर्मा, के. के. एन. (1999) ''द खैरवार्स (बायो–सोशल डाईमेन्शन)'' नॉथर्न बुक सेन्टर, न्यू डेल्ही।
13. तिवारी, श्याम सुन्दर (2008) ''रोहतास एवं कैमूर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'' किशोर विधा निकेतन, वाराणसी।
14. वनस्वर शोध पत्रिका, अंक सितम्बर,1998 वन साहित्य अकादमी, जबलपुर।